केड्डी वड्डाई, ग़णियां सापुरिस्सनि जी,
सम दरसी सीतल सदा, सभ जा सुखदाई,
ममता, मैलु अंदर में, रखनि न राई,
सामी सदाई, कनि उपकार अथाह थी.

सामी साहब कहते हैं कि मैं सत्पुरुषों की, संतों की बड़ाई (महिमा) कहाँ तक गिनाऊँ ? सत्पुरुष/संत समदर्शी और शीतल स्वभाव वाले होते हैं। संत सबको सुख देने वाले होते हैं। वे अपने मन में राई जितनी भी ममता और मैल नहीं रखते । संतजन सदा ही सब पर अथाह उपकार करते रहते हैं।

संत समाज का सौंदर्य, गौरव और मार्गदर्शक होते हैं। संतों की महिमा और महानता का यथार्थ वर्णन कर पाना कठिन है। फिर भी संतों की बड़ाई शब्दबद्ध करने का प्रयत्न किया गया है। संतों की यात्रा आत्म-विकास से समाज-विकास और आत्मज्ञान से अध्यात्म की ओर रही है। 'जैसी करनी, वैसी कहनी' का तत्त्व उनके जीवन-व्यवहार में दिखाई देता है। उनकी यह धारणा और सीख थी कि आत्मा की उन्नति ही मानव-जाति का अंतिम उद्देश्य है। इसलिये उन्होंने भक्ति रस को अधिक महत्व दिया। संत तुकाराम के शब्दों में, '**जे का रंजले गांजले। त्यासी म्हणे .. आपुले। तोचि साधू ओळखावा।**' अथवा '**कबीरा, सोई पीर है, जो जानै पर पीर।**' ये उक्तियाँ ही भक्तियोग का सार है। यही सच्चे संतों के लक्षण हैं। संत लोक में रहते हुए भी मन से निवृत्त होते हैं। संसार में रहते हुए भी नहीं रहते। फिर भी वे लोक-कल्याण के लिए छटपटाते रहते हैं। संत स्वयं पीड़ा, यातना, दुख सह कर लोक के लिए, मनुष्य मात्र के लिए कठिन भव-नदी पार करने के लिए सेतु बाँधते हैं।

मराठी संत समर्थ रामदास स्वामी ने समदृष्टि धारण करने वाले को संत कहा है- '**समदृष्टि तो संत**'। संत एकनाथ कहते हैं कि 'साधु-संत निरपेक्ष होते हैं। वे निरिच्छ होते हैं। उनका चित्त परमेश्वर में लगा रहता है। वे मनुष्य-देह धारण करते हुए भी विदेह होते हैं। वे परोपकारी होते हैं।' महाकवि सामी भी इसी प्रकार की बात करते हैं। शीतल स्वभाव वाले, समदर्शी संत सदा लोक-कल्याण और मानव-जाति के उद्धार की कामना करते हैं।

सरवर, तरुवर, संतजन, चौथा बरसे मेह।
परमारथ के कारने, चारों धरी देह ।।

■